IJCRT.ORG ISSN : 2320-2882

INTERNATIONAL JOURNAL OF CREATIVE RESEARCH THOUGHTS (IJCRT)

An International Open Access, Peer-reviewed, Refereed Journal

दलित चेतना के प्रणेता के रूप में डॉ. भीमराव अंबेडकर का विश्लेषण

डॉ. महेश कुमार

शिक्षक

इन्टर स्तरीय स्कूल भवनपुरा खरीक , भागलपुर

भारतीय समाज की जाति-व्यवस्था एक दीर्घकालीन सामाजिक संरचना रही है, जो न केवल श्रम-विभाजन के आधार पर समाज को संगठित करती थी, बल्कि सामाजिक असमानता और ऊँच-नीच के दायरे में विभिन्न वर्गों को बाँधकर रखती थी। इस व्यवस्था ने विशेषतः शूद्रों और तथाकथित 'अवर्ण' जातियों - जिन्हें आज 'दलित' कहा जाता है - को सदियों तक शोषण, अपमान, सामाजिक बहिष्कार, शैक्षिक वंचना, और धार्मिक अस्पृश्यता के दायरे में रखा। धार्मिक ग्रंथों, सामाजिक परंपराओं और शासकीय व्यवस्थाओं ने मिलकर इस जातिगत असमानता को न केवल बनाए रखा, बल्कि उसे वैधता भी प्रदान की। ऐसे सामाजिक परिदृश्य में, जहां परिवर्तन की कोई उम्मीद क्षीण प्रतीत होती थी, डॉ. भीमराव अंबेडकर का उदय एक युगांतकारी घटना के रूप में सामने आया। वे केवल एक दलित नेता नहीं थे, बल्कि आधुनिक भारत के सामाजिक क्रांतिकारी, संवैधानिक विचारक, मानवाधिकारों के प्रबल पक्षधर, और एक समावेशी राष्ट्र की कल्पना करने वाले दूरदर्शी चिंतक थे। उन्होंने दलितों की पीड़ा को केवल भावनात्मक स्तर पर ही नहीं उठाया, बल्कि उसे तार्किक, राजनीतिक और विधिक ढांचे में रूपांतरित करते हुए दलित मुक्ति को एक बौद्धिक आंदोलन बनाया। डॉ. अंबेडकर की सबसे बड़ी देन यह रही कि उन्होंने दलित चेतना को दार्शनिक आधार, वैधानिक संरचना और सामाजिक न्याय की दृष्टि से सशक्त किया। 'जाति का उन्मूलन', 'बुद्ध और उनका धर्म', 'रिडल्स इन हिन्दुइज्म', 'स्टेट्स एंड माइनॉरिटीज़' तथा भारतीय संविधान की रचना के दौरान उनके योगदान ने भारत के सामाजिक न्याय की दिशा को निर्णायक रूप से प्रभावित किया। उन्होंने शिक्षा को दलित मुक्ति का सबसे बड़ा हथियार बताया और समानता, स्वतंत्रता तथा बंधुत्व के सिद्धांतों को दलित विमर्श का आधार बनाया। डॉ. अंबेडकर ने यह स्पष्ट किया कि जाति केवल सामाजिक पहचान नहीं, बल्कि सामाजिक वर्चस्व और उत्पीड़न का साधन है। इसलिए, उन्होंने सिर्फ आरक्षण या राजनीतिक प्रतिनिधित्व की मांग नहीं की, बल्कि एक ऐसे समाज की रचना का स्वप्न देखा जिसमें व्यक्ति की पहचान उसकी जाति नहीं, बल्कि उसका मानवीय अस्तित्व हो।

उन्होंने भारतीय समाज को बौद्ध धर्म की करुणा, तर्क और समानता की ओर उन्मुख किया और अपने अनुयायियों से आह्वान किया कि "शिक्षित बनो, संगठित बनो और संघर्ष करो।" इस प्रकार, डॉ. अंबेडकर की विचारधारा न केवल दलित चेतना की प्रेरक शक्ति है, बल्कि भारत के समावेशी, न्यायसंगत और लोकतांत्रिक भविष्य की दिशा भी निर्धारित करती है। इस शोधप्रबंध में डॉ. अंबेडकर की दलित चेतना, उनके दार्शनिक और वैधानिक योगदान, तथा उनकी प्रासंगिकता पर विस्तार से विश्लेषण किया जाएगा। दलित चेतना का तात्पर्य उस सामाजिक एवं वैचारिक जागरूकता से है जो दलित समुदाय को अपने अधिकारों, आत्मसम्मान और सामाजिक बराबरी के लिए संघर्ष करने को प्रेरित करती है। यह चेतना जातिगत हीनता, छुआछूत और शोषण के विरुद्ध संघर्ष का प्रतीक बन जाती है। अंबेडकर ने दलित चेतना को केवल प्रतिक्रिया तक सीमित नहीं रखा, बल्कि उसे *संविधानिक अधिकारों, शिक्षा, सामाजिक समरसता और आत्मनिर्भरता* के आधार पर पुनर्परिभाषित किया। डॉ. अंबेडकर स्वयं एक अस्पृश्य जाति (महार) से थे और उन्होंने अपने जीवन में गहन जातीय भेदभाव का अनुभव किया। इन अनुभवों ने उनमें

समाज के निचले तबकों के लिए न्याय और सम्मान की आग प्रज्वलित की। उन्होंने शिक्षा को मुक्ति का मार्ग माना और स्वयं उच्च शिक्षा प्राप्त कर दलितों के लिए प्रेरणा बने।

बीजशब्द :- भीमराव अंबेडकर, दलित चेतना, सामाजिक न्याय, जाति व्यवस्था, संविधान निर्माता, अधिकार चेतना, सामाजिक क्रांति

डॉ. अंबेडकर के अनुसार, शिक्षा केवल अक्षरज्ञान का माध्यम नहीं थी, बल्कि वह सामाजिक चेतना जगाने और आत्मसम्मान की भावना विकसित करने का एक सशक्त उपकरण थी। उनका मानना था कि जातिगत अन्याय और भेदभाव से मुक्ति पाने के लिए दलितों को सबसे पहले शिक्षा प्राप्त करनी चाहिए। उनका प्रसिद्ध नारा "शिक्षित बनो, संगठित हो, संघर्ष करो" न केवल एक आह्वान था, बल्कि एक दीर्घकालीन रणनीति भी थी, जो दलित समाज को आत्मनिर्भर, आत्मविश्वासी और अधिकारों के प्रति जागरूक बनाने के लिए बनाई गई थी।[1] डॉ. अंबेडकर ने शिक्षा को एक ऐसा 'शस्त्र' माना, जिससे वंचित वर्गों को मानसिक गुलामी से मुक्ति मिल सकती है। उनका विचार था कि जब तक दलित और पिछड़े वर्ग बौद्धिक रूप से जागरूक नहीं होंगे, तब तक वे अपने ऊपर हो रहे सामाजिक और आर्थिक शोषण को पहचान नहीं पाएंगे, और न ही उसके खिलाफ संघर्ष कर सकेंगे।अंबेडकर का यह भी मानना था कि शिक्षा आत्म-सम्मान की पहली सीढ़ी है। जब कोई व्यक्ति शिक्षित होता है, तो उसमें आत्मसम्मान और आत्म-गौरव की भावना विकसित होती है।[2] वह अपने अधिकारों और कर्तव्यों को बेहतर ढंग से समझता है और समाज में अपने स्थान के लिए संघर्ष करता है। अंबेडकर स्वयं इसका जीवंत उदाहरण थे। एक अछूत माने जाने वाले समाज से आने के बावजूद उन्होंने कोलंबिया विश्वविद्यालय और लंदन स्कूल ऑफ इकोनॉमिक्स जैसी संस्थाओं से उच्च शिक्षा प्राप्त की और भारतीय संविधान के निर्माता बने।[3]

डॉ. अंबेडकर केवल शिक्षा के महत्व की बात करके नहीं रुके, बल्कि उन्होंने इसके लिए संस्थागत प्रयास भी किए। उन्होंने दलितों के लिए स्कूल, हॉस्टल और पुस्तकालयों की स्थापना करवाई। उन्होंने यह महसूस किया कि जब तक गरीब, दलित, शोषित वर्ग के बच्चों को पढ़ने के लिए अनुकूल वातावरण नहीं मिलेगा, तब तक शिक्षा केवल एक सपना बनी रहेगी। उन्होंने कई शैक्षणिक योजनाओं और छात्रवृत्तियों के लिए आंदोलन भी चलाए। अंबेडकर के अनुसार शिक्षा से आत्म-सशक्तिकरण केवल व्यक्तिगत नहीं होता, बल्कि वह राजनीतिक और आर्थिक सशक्तिकरण का मार्ग भी प्रशस्त करता है।[4] जब दलित समाज शिक्षित होगा, तभी वह राजनीतिक प्रतिनिधित्व, आर्थिक अवसरों, और सामाजिक समानता की लड़ाई को प्रभावी ढंग से लड़ सकेगा। उन्होंने यह भी कहा कि यदि दलित समाज को सत्ता में भागीदारी चाहिए, तो पहले उसे शिक्षा में भागीदारी सुनिश्चित करनी होगी। डॉ. अंबेडकर का यह स्पष्ट मत था कि जातिवाद एक बौद्धिक समस्या है और इसका समाधान भी बौद्धिक ही होना चाहिए। इसलिए उन्होंने शिक्षा को सामाजिक परिवर्तन का सबसे प्रभावी साधन माना। आज भी जब हम भारत में शिक्षा की असमानता, स्कूल ड्रॉपआउट रेट और डिजिटल डिवाइड जैसी समस्याओं को देखते हैं, तो अंबेडकर की यह शिक्षा-संबंधी चेतावनी और मार्गदर्शन अत्यंत प्रासंगिक लगते हैं। उनके विचारों के आलोक में आज भी दलित, आदिवासी और अन्य वंचित समुदायों के लिए शिक्षा एक क्रांतिकारी हथियार के रूप में कार्य कर सकती है।[5]

डॉ. भीमराव अंबेडकर की दृष्टि में शिक्षा केवल ज्ञान प्राप्त करने का माध्यम नहीं थी, बल्कि यह आत्म-सशक्तिकरण, सामाजिक समानता और मानवीय गरिमा की स्थापना का आधार थी। उन्होंने अपने जीवन से यह सिद्ध कर दिया कि शिक्षा वह कुंजी है, जिससे न केवल व्यक्ति बल्कि पूरा समाज अपने से मुक्त हो सकता है। आज भी उनकी यह विचारधारा हमें प्रेरणा देती है कि जब तक समाज का अंतिम व्यक्ति शिक्षित नहीं होता, तब तक कोई भी सामाजिक क्रांति अधूरी है।[6] डॉ. भीमराव अंबेडकर भारतीय संविधान के प्रमुख शिल्पी थे, और उन्होंने संविधान निर्माण की प्रक्रिया के दौरान यह सुनिश्चित किया कि भारत की लोकतांत्रिक प्रणाली केवल राजनीतिक स्वतंत्रता तक सीमित न रहे, बल्कि वह सामाजिक और आर्थिक समानता को भी यथार्थ रूप में लागू कर सके। उनका यह स्पष्ट मत था कि जब तक समाज में सभी वर्गों को समान अधिकार और सम्मान नहीं मिलेगा, तब तक लोकतंत्र अधूरा रहेगा।[7] उन्होंने दलितों और अन्य वंचित समुदायों के लिए संविधान में ऐसे प्रावधान जोड़े, जो उन्हें समानता, स्वतंत्रता और गरिमा का जीवन जीने का संवैधानिक आधार प्रदान करते हैं। अनुच्छेद 14 के माध्यम से सभी नागरिकों को कानून के समक्ष समानता का अधिकार मिला, जबकि अनुच्छेद 15 ने राज्य को यह अधिकार दिया कि वह सामाजिक और शैक्षणिक रूप से पिछड़े वर्गों के लिए विशेष प्रावधान कर सके। अनुच्छेद 16 ने सरकारी नौकरियों में समान अवसर सुनिश्चित किए, जिससे दलितों और पिछड़े वर्गों को प्रशासनिक तंत्र में प्रवेश का मार्ग मिला। सबसे महत्वपूर्ण अनुच्छेद 17 ने अस्पृश्यता को समाप्त कर उसे एक दंडनीय अपराध घोषित किया, जिससे भारत के सामाजिक इतिहास की एक सबसे पुरानी और अमानवीय प्रथा को समाप्त करने की दिशा में एक क्रांतिकारी कदम उठाया गया।[8]

इसके अतिरिक्त, संविधान के अनुच्छेद 46 में राज्य को यह निर्देश दिया गया कि वह अनुसूचित जातियों और जनजातियों के शैक्षणिक और आर्थिक हितों को विशेष रूप से बढ़ावा देगा और सामाजिक अन्याय तथा शोषण से उनकी रक्षा करेगा। डॉ. अंबेडकर ने यह भी सुनिश्चित किया कि अनुसूचित जातियों और जनजातियों को लोकसभा और राज्य विधानसभाओं में आरक्षित सीटें मिलें, जिससे वे नीति-निर्माण प्रक्रिया में भागीदारी कर सकें।[9] डॉ. अंबेडकर की यह दूरदृष्टि थी कि केवल कानूनी और राजनीतिक अधिकारों से समाज में असली परिवर्तन नहीं आएगा, जब तक कि सामाजिक और आर्थिक स्तर पर समानता को सुनिश्चित नहीं किया जाए। उन्होंने आरक्षण को केवल एक अस्थायी उपाय माना, जिसका उद्देश्य ऐतिहासिक रूप से वंचित समुदायों को मुख्यधारा से जोड़ना था। उन्होंने यह भी कहा था कि यह व्यवस्था तब तक लागू रहनी चाहिए जब तक समाज में वास्तविक समानता और समावेशिता स्थापित नहीं हो जाती।[10] डॉ. अंबेडकर द्वारा स्थापित संवैधानिक अधिकार न केवल दलितों के लिए न्याय और गरिमा की गारंटी हैं, बल्कि वे भारतीय लोकतंत्र की आत्मा को समावेशी, न्यायपूर्ण और मानवतावादी बनाने की दिशा में एक महान प्रयास हैं। उनका संविधान निर्माण में किया गया कार्य आज भी भारतीय समाज के वंचित वर्गों के सशक्तिकरण का आधार बना हुआ है।[11]

डॉ. भीमराव अंबेडकर ने दलित समाज के अधिकारों की रक्षा के लिए राजनीतिक क्षेत्र को अत्यंत महत्वपूर्ण माध्यम के रूप में देखा। उन्होंने यह स्पष्ट रूप से महसूस किया कि जब तक दलितों को राजनीतिक रूप से संगठित नहीं किया जाएगा, तब तक वे अपने सामाजिक और आर्थिक अधिकारों की प्रभावी ढंग से रक्षा नहीं कर सकेंगे। इसी उद्देश्य से उन्होंने कई संगठनों और राजनीतिक मंचों की स्थापना की, जिनके माध्यम से दलितों को राजनीतिक चेतना और नेतृत्व का अवसर मिला।[12] डॉ. अंबेडकर ने सबसे पहले 1924 में "बहिष्कृत हितकारिणी सभा" की स्थापना की, जिसका उद्देश्य शिक्षा, सामाजिक सुधार और राजनीतिक अधिकारों के लिए काम करना था। यह संगठन दलितों के भीतर सामाजिक जागरूकता पैदा करने की दिशा में पहला बड़ा कदम था। इसके माध्यम से उन्होंने अस्पृश्यता के खिलाफ अभियान चलाया और शिक्षा के महत्व को जन-जन तक पहुँचाया। इसके बाद 1936 में उन्होंने "स्वतंत्र श्रमिक पार्टी" की स्थापना की, जिसने ब्राह्मणवादी और सामंतवादी पार्टियों के प्रभुत्व को चुनौती दी।[13] यह पार्टी न केवल दलितों के अधिकारों की बात करती थी, बल्कि मजदूरों, किसानों और निम्न वर्गों की समस्याओं को भी संसद और विधानसभाओं में उठाने का कार्य करती थी। पार्टी ने बॉम्बे प्रांतीय चुनावों में भाग लिया और उल्लेखनीय सफलता प्राप्त की, जिससे अंबेडकर की राजनीतिक नेतृत्व क्षमता सिद्ध हुई। 1942 में डॉ. अंबेडकर ने "शेड्यूल्ड कास्ट फेडरेशन" की स्थापना की, जो पूरी तरह से अनुसूचित जातियों के अधिकारों और हितों की रक्षा के लिए समर्पित संगठन था। यह संगठन दलितों की राजनीतिक एकता को मज़बूत करने और उन्हें एक राष्ट्रव्यापी मंच प्रदान करने का कार्य करता था।[14]

डॉ. अंबेडकर के इन प्रयासों का दीर्घकालिक प्रभाव यह हुआ कि दलित समाज में राजनीतिक चेतना विकसित हुई और उन्होंने अपने अधिकारों के लिए चुनावी राजनीति में भागीदारी करनी शुरू की। उनके नेतृत्व में दलित राजनीति एक आंदोलन के रूप में उभरी जिसने भारतीय लोकतंत्र को अधिक समावेशी और प्रतिनिधिक बना दिया। अंबेडकर ने हमेशा इस बात पर बल दिया कि "राजनीतिक शक्ति ही सामाजिक और आर्थिक मुक्ति का साधन है।"[15] आज जिस तरह से भारत में अनुसूचित जातियों को राजनीतिक प्रतिनिधित्व प्राप्त है—चाहे वह संसद हो, राज्य विधानसभाएं हों, या पंचायती राज संस्थाएं उसका आधार अंबेडकर द्वारा रखी गई नीतियों और आंदोलनों में ही निहित है। उन्होंने दलितों के लिए आरक्षित निर्वाचन क्षेत्र, राजनीतिक आरक्षण, और चुनावी भागीदारी के सिद्धांतों को संविधान में स्थान दिलवाकर उन्हें सत्ता के केंद्र में पहुँचाने की राह खोली।[16] डॉ. अंबेडकर ने न केवल दलितों को राजनीतिक मंच प्रदान किया, बल्कि उन्हें नेतृत्व और नीति निर्माण में भागीदार बनाकर भारतीय लोकतंत्र में उनकी प्रभावी उपस्थिति सुनिश्चित की।

भारत में जाति व्यवस्था के कारण दलित समुदाय को सामाजिक, धार्मिक और राजनीतिक रूप से हाशिए पर धकेल दिया गया था। डॉ. भीमराव अंबेडकर ने इस अन्यायपूर्ण ढांचे के विरुद्ध एक ऐतिहासिक कदम उठाते हुए 14 अक्टूबर 1956 को नागपुर की दीक्षाभूमि पर पाँच लाख से अधिक अनुयायियों के साथ बौद्ध धर्म को अपनाया। यह केवल धार्मिक परिवर्तन नहीं था, बल्कि सामाजिक विद्रोह और आत्मसम्मान की पुनर्स्थापना का एक निर्णायक क्षण था, जिसे "जातीय दासता से मुक्ति का घोषणापत्र" भी कहा जा सकता है। डॉ. अंबेडकर ने यह निर्णय वर्षों के अनुभव, अध्ययन और सामाजिक विश्लेषण के आधार पर लिया।[17] वे मानते थे कि ऐसा धर्म अपनाना चाहिए जो समानता, स्वतंत्रता और भाईचारे का समर्थन करे। उन्होंने 1935 में ही घोषणा कर दी थी कि "मैं हिंदू के रूप में जन्मा, लेकिन हिंदू के रूप में मरूंगा नहीं।" उनके अनुसार,

बौद्ध धर्म एक ऐसा तर्कप्रधान, जातिविहीन और मानवीय धर्म था जिसमें ब्राह्मणवादी मध्यस्थता की कोई आवश्यकता नहीं थी और जो व्यक्ति की गरिमा को सर्वोपरि रखता था। धर्म परिवर्तन के समय अंबेडकर ने जो 22 प्रतिज्ञाएँ अनुयायियों को दिलाईं, वे किसी भी धार्मिक रूपांतरण की तुलना में कहीं अधिक राजनीतिक और सामाजिक संदेशवाहक थीं। इनमें देवी-देवताओं की ब्राह्मणवादी पूजा से इंकार, जाति आधारित कर्मकांडों का बहिष्कार और बौद्ध धर्म के मूल तत्वों – त्रिरत्न, पंचशील और अष्टांग मार्ग – को अपनाने की घोषणा शामिल थी। ये प्रतिज्ञाएँ दलितों के आत्मसम्मान, नैतिक जागरण और सांस्कृतिक पुनर्जागरण का आधार बनीं।[18]

डॉ. अंबेडकर ने अपने बौद्ध धर्म को 'नवयान' या 'नवबौद्ध धर्म' कहा, जिसमें परंपरागत बौद्ध तत्वों को आधुनिक लोकतांत्रिक मूल्यों जैसे न्याय, समानता और वैज्ञानिक दृष्टिकोण के साथ जोड़ा गया। उनके अनुसार, बुद्ध का धर्म केवल मोक्ष का साधन नहीं, बल्कि सामाजिक क्रांति का माध्यम भी था। नवयान बौद्ध धर्म ने दलितों को सांस्कृतिक आत्मनिर्भरता और एक सकारात्मक सामाजिक पहचान प्रदान की। धर्म परिवर्तन केवल एक आध्यात्मिक निर्णय नहीं था, बल्कि डॉ. अंबेडकर की एक सुविचारित राजनीतिक रणनीति भी थी।[19] उन्होंने समझा कि जब तक दलितों को सांस्कृतिक पहचान और मानसिक स्वतंत्रता नहीं मिलेगी, तब तक वे राजनीति में प्रभावशाली भूमिका नहीं निभा सकते। बौद्ध धर्म ने दलितों को जाति आधारित प्रतीकों से मुक्त कर संगठित नेतृत्व की दिशा में प्रेरित किया। नवबौद्ध धर्म ने दलितों में आत्मसम्मान की भावना को बढ़ावा दिया। धर्म परिवर्तन के बाद शिक्षा, साहित्य, पत्रकारिता, प्रशासन और सामाजिक सेवा जैसे क्षेत्रों में नवबौद्ध समुदायों ने उल्लेखनीय प्रगति की। यह परिवर्तन महज धार्मिक नहीं, बल्कि एक जीवंत सांस्कृतिक पुनर्रचना थी, जिसने दलितों को दया के पात्र से सम्माननीय नागरिक बनने का मार्ग दिखाया।[20]

डॉ. अंबेडकर का यह आंदोलन भारत तक ही सीमित नहीं रहा, बल्कि इसका वैश्विक प्रभाव भी पड़ा। जापान, अमेरिका, श्रीलंका, यूरोप और थाईलैंड में नवबौद्ध अनुयायी सक्रिय हैं और हर वर्ष धम्मचक्र प्रवर्तन दिवस पर दीक्षाभूमि, नागपुर में लाखों लोग एकत्र होते हैं। विश्व के बौद्ध संगठनों में भी अंबेडकर के नवयान विचारों पर चर्चा होती है, जिससे यह आंदोलन एक अंतरराष्ट्रीय पहचान प्राप्त कर चुका है। डॉ. अंबेडकर का धर्म परिवर्तन केवल व्यक्तिगत निर्णय नहीं था, बल्कि यह एक सामाजिक क्रांति, राजनीतिक जागृति, सांस्कृतिक पुनर्निर्माण, और आध्यात्मिक मुक्ति का घोष था। उन्होंने न केवल धर्म बदला, बल्कि भारतीय दलित चेतना को एक नया दर्शन, नया मूल्यबोध और एक सशक्त भविष्य प्रदान किया। यह उनके जीवन-दर्शन का पुनर्लेखन था – जिसमें जाति का निषेध, न्याय की स्थापना और मानवता की पुनर्खोज निहित थी।[21]

डॉ. भीमराव अंबेडकर ने जाति व्यवस्था की आलोचना और दलित समुदाय के अधिकारों की व्याख्या के लिए कई महत्वपूर्ण पुस्तकें लिखीं। उनकी प्रसिद्ध कृति *जाति का उन्मूलन* में उन्होंने हिंदू समाज में व्याप्त जातिवादी मानसिकता और ब्राह्मणवादी वर्चस्व पर गहरी चोट की। इस पुस्तक में अंबेडकर ने वर्ण व्यवस्था को सामाजिक अन्याय का स्रोत बताया और इसके विरुद्ध क्रांतिकारी दृष्टिकोण प्रस्तुत किया।[22] उन्होंने लिखा कि जाति व्यवस्था न केवल सामाजिक असमानता को जन्म देती है, बल्कि यह व्यक्ति की स्वतंत्रता और आत्मसम्मान को भी नष्ट करती है। *शूद्र कौन थे?* में अंबेडकर ने प्राचीन भारतीय इतिहास का गहन अध्ययन करके यह बताया कि शूद्र कभी उच्च वर्ण के क्षत्रिय हुआ करते थे, लेकिन सामाजिक, धार्मिक और राजनीतिक कारणों से उन्हें निम्न दर्जा दे दिया गया। यह पुस्तक ऐतिहासिक तथ्यों के आधार पर दलितों की खोई हुई गरिमा को पुनर्स्थापित करने का प्रयास है।[23] इसी प्रकार *अछूत कौन और क्यों?* में अंबेडकर ने अछूतों की उत्पत्ति के सामाजिक कारणों की विवेचना की। उन्होंने यह तर्क प्रस्तुत किया कि अछूत कोई जन्मजात समूह नहीं हैं, बल्कि यह ब्राह्मणवादी व्यवस्था द्वारा निर्मित एक दमनकारी सामाजिक श्रेणी है, जिसे धार्मिक आधारों पर जायज़ ठहराया गया। इन पुस्तकों के माध्यम से अंबेडकर ने न केवल दलित समाज के इतिहास और उत्पीड़न की सच्चाइयों को उजागर किया, बल्कि उन्होंने सामाजिक क्रांति और न्याय के लिए एक वैचारिक आधार भी प्रदान किया। उनका साहित्य दलित चेतना, आत्मसम्मान और सामाजिक बदलाव की दिशा में एक मजबूत प्रेरणा का कार्य करता है।[24]

डॉ. भीमराव अंबेडकर के विचारों की सबसे बड़ी विशेषता उनकी *सैद्धांतिक गहराई* है। उनका चिंतन केवल भावनात्मक विरोध या व्यक्तिगत पीड़ा की अभिव्यक्ति नहीं था, बल्कि यह एक गहन दार्शनिक, राजनीतिक और सामाजिक विश्लेषण पर आधारित था। उन्होंने जाति व्यवस्था, छुआछूत और सामाजिक भेदभाव के विरुद्ध जो दृष्टिकोण अपनाया, वह केवल अनुभवजन्य नहीं, बल्कि तार्किक, ऐतिहासिक और वैज्ञानिक

तथ्यों पर आधारित था।[25] अंबेडकर ने हिन्दू धर्म की वर्ण व्यवस्था को चुनौती देते हुए यह सिद्ध किया कि यह व्यवस्था समाज में असमानता, शोषण और उत्पीड़न को संस्थागत रूप देती है। उन्होंने अपने लेखन में पाश्चात्य राजनीतिक विचारों जैसे *न्याय, समानता, स्वतंत्रता* को भारतीय सामाजिक यथार्थ के संदर्भ में रखा और एक ऐसा वैचारिक ढांचा प्रस्तुत किया जो दलित मुक्ति के लिए ठोस रणनीति बन सका। उदाहरण के लिए, "जाति का उन्मूलन" में उन्होंने न केवल ब्राह्मणवाद की आलोचना की, बल्कि यह भी बताया कि जाति प्रथा के उन्मूलन के बिना कोई भी सामाजिक सुधार अधूरा रहेगा।[26] उन्होंने दार्शनिक दृष्टिकोण से सामाजिक न्याय को लोकतंत्र का मूलाधार माना और इसे केवल चुनावी प्रक्रिया तक सीमित न रखकर सामाजिक संरचना में बदलाव से जोड़ा। इस प्रकार अंबेडकर का आंदोलन केवल एक सामाजिक विद्रोह नहीं था, बल्कि वह एक *सुनियोजित वैचारिक क्रांति* थी, जिसमें तर्क, इतिहासबोध, संवैधानिकता और मानवीय गरिमा का समन्वय था। यही सैद्धांतिक गहराई उन्हें केवल एक नेता या सुधारक नहीं, बल्कि एक विचारक और आधुनिक भारत के निर्माता के रूप में स्थापित करती है।[27]

डॉ. भीमराव अंबेडकर का सामाजिक न्याय का दृष्टिकोण मूलतः संविधान और विधिक ढांचे पर आधारित था। उन्होंने यह स्पष्ट रूप से माना कि समाज में व्याप्त असमानताओं और जातिगत भेदभाव को केवल सामाजिक या नैतिक आह्वान से नहीं मिटाया जा सकता, बल्कि इसके लिए एक विधिसम्मत और संवैधानिक उपाय आवश्यक है।[28] अंबेडकर का यह विश्वास था कि लोकतंत्र और संविधान ही वह साधन हैं जिनके माध्यम से दलितों, पिछड़ों और वंचित समुदायों को उनके मूलभूत अधिकार दिलाए जा सकते हैं। डॉ. अंबेडकर ने भारत के संविधान के निर्माण में निर्णायक भूमिका निभाई और उसमें समानता, स्वतंत्रता, न्याय और बंधुत्व जैसे मूल्य समाविष्ट किए।[29] उन्होंने यह सुनिश्चित किया कि संविधान में अनुसूचित जातियों और जनजातियों को आरक्षण, राजनीतिक प्रतिनिधित्व और शिक्षा व नौकरियों में विशेष सुविधाएं मिलें। उनके अनुसार, "संविधान केवल कानूनों का संग्रह नहीं, बल्कि सामाजिक क्रांति का दस्तावेज़ है।" उन्होंने दलितों को आह्वान किया कि वे हथियार या हिंसा के रास्ते नहीं, बल्कि संविधान और लोकतांत्रिक संस्थाओं के माध्यम से अपने अधिकारों की लड़ाई लड़ें। इस दृष्टिकोण का गहरा प्रभाव यह पड़ा कि भारत का दलित आंदोलन एक कानूनी और संवैधानिक मार्ग पर आगे बढ़ा।[30] अंबेडकर ने यह भी चेतावनी दी थी कि यदि लोकतंत्र केवल राजनीतिक स्वतंत्रता तक सीमित रहा और सामाजिक तथा आर्थिक समानता न लाई गई, तो यह लोकतंत्र एक धोखा बन जाएगा। इसलिए वे निरंतर संविधान में सामाजिक न्याय के सशक्त प्रावधानों के पक्षधर रहे। उनका यह संविधान आधारित दृष्टिकोण आज भी दलित राजनीति, सामाजिक आंदोलनों और न्यायिक विमर्श की प्रेरणा बना हुआ है। अंबेडकर का यह विचार कि *"राजनीतिक सत्ता सामाजिक और आर्थिक सुधारों के लिए एक साधन है, न कि उद्देश्य,"* भारतीय लोकतंत्र के मूलभूत दर्शन को दर्शाता है।[31]

डॉ. भीमराव अंबेडकर द्वारा प्रतिपादित दलित चेतना आज भी भारतीय समाज के लिए अत्यंत प्रासंगिक है। यद्यपि संविधान में समता, स्वतंत्रता और न्याय जैसे मूल अधिकार निहित किए गए हैं, फिर भी जातिगत भेदभाव, अस्पृश्यता, सामाजिक बहिष्कार, और आर्थिक असमानता की घटनाएँ अनेक क्षेत्रों में विद्यमान हैं। आज भी दलित समुदाय को शिक्षा, स्वास्थ्य, रोजगार, भूमि स्वामित्व और न्याय व्यवस्था में बराबरी का दर्जा नहीं मिल पाया है। ग्रामीण क्षेत्रों में दलितों को मंदिरों में प्रवेश से रोका जाता है, सार्वजनिक स्थलों पर उनके साथ भेदभाव होता है, और उनकी सामाजिक प्रतिष्ठा को लगातार चुनौती मिलती रहती है।[32] शहरी क्षेत्रों में भी जाति सूचक शब्दों, छिपे हुए भेदभाव और अवसरों की असमान उपलब्धता के उदाहरण सामने आते हैं। ऐसे सामाजिक परिदृश्य में डॉ. अंबेडकर का चिंतन एक प्रेरणास्रोत है। उनकी *दलित चेतना* सिर्फ पीड़ितों की पीड़ा का बयान नहीं करती, बल्कि उसे एक सशक्त सामाजिक क्रांति में रूपांतरित करने का संदेश देती है। वे अधिकारों की भीख नहीं, बल्कि उन्हें कानूनी और लोकतांत्रिक माध्यम से अर्जित करने की बात करते हैं।[33] आज के *भीम आर्मी*, *दलित पैंथर* जैसे आंदोलनों, दलित साहित्य की नई धारा, और विश्वविद्यालयों तथा न्यायालयों में समानता के लिए हो रहे संघर्षों में अंबेडकर की चेतना स्पष्ट रूप से झलकती है। इसके साथ ही, दलित लेखकों, कवियों, और चिंतकों द्वारा रचित समकालीन साहित्य में सामाजिक यथार्थ की कठोरता और बदलाव की आकांक्षा दिखाई देती है, जो अंबेडकर के विचारों से प्रेरित है। इस प्रकार, डॉ. अंबेडकर की दलित चेतना न केवल अतीत की सामाजिक अन्याय के विरुद्ध थी, बल्कि वह वर्तमान और भविष्य के लिए सामाजिक पुनर्निर्माण की आधारशिला भी है। जब तक जातिगत भेदभाव समाप्त नहीं

होता और सामाजिक समता पूर्ण रूप से स्थापित नहीं होती, तब तक अंबेडकर का विचार और दलित चेतना भारतीय समाज की आवश्यक वैचारिक ऊर्जा बनी रहेगी।[34]

डॉ. भीमराव अंबेडकर का जीवन और कार्य केवल उनके समय तक सीमित नहीं हैं, बल्कि वे आज भी एक जीवंत प्रेरणा स्रोत और सामाजिक परिवर्तन के प्रतीक बने हुए हैं। वे केवल भारत के संविधान निर्माता नहीं थे, बल्कि एक दूरद्रष्टा सामाजिक चिंतक, मानवतावादी विचारक और क्रांतिकारी सुधारक भी थे, जिन्होंने भारतीय समाज की असमानता, जातिवाद और पितृसत्तात्मक व्यवस्था के मूल ढांचे को चुनौती दी। उन्होंने न केवल समस्याओं की गहराई से पहचान की, बल्कि उनके समाधान के लिए एक सशक्त और तार्किक वैचारिक आधार भी प्रस्तुत किया। डॉ. अंबेडकर का यह विश्वास था कि जब तक समाज में हर व्यक्ति को समान अवसर, सम्मान और अधिकार नहीं मिलते, तब तक स्वतंत्रता और लोकतंत्र केवल दिखावा रह जाएंगे। उन्होंने दलितों और शोषित वर्गों को यह समझाया कि मुक्ति केवल राजनीतिक सत्ता या आर्थिक संसाधनों से नहीं मिलेगी, बल्कि शिक्षा, संगठन और संघर्ष के मार्ग से ही सच्ची सामाजिक मुक्ति संभव है। उनकी यह सोच केवल दलित चेतना का आधार नहीं बनी, बल्कि एक समग्र सामाजिक न्याय की चेतना को जन्म देने वाली विचारधारा बन गई। उन्होंने भारत के संविधान को न केवल एक कानूनी दस्तावेज के रूप में देखा, बल्कि उसे सामाजिक क्रांति का माध्यम माना। उनके द्वारा निर्मित संविधान ने समानता, स्वतंत्रता, धर्मनिरपेक्षता और सामाजिक न्याय को केंद्र में रखकर भारतीय लोकतंत्र को नई दिशा दी। विशेष रूप से अनुसूचित जातियों, जनजातियों, महिलाओं और पिछड़े वर्गों को संरक्षित अधिकारों के माध्यम से उन्होंने उन्हें आत्मनिर्भर और सशक्त नागरिक बनने का अवसर दिया।

डॉ. अंबेडकर की दृष्टि केवल वर्ग या जाति विशेष तक सीमित नहीं थी। वे मानवता के सार्वभौमिक मूल्यों में विश्वास रखते थे। उनका नवबौद्ध आंदोलन इस बात का प्रमाण है कि उन्होंने धर्म को भी सामाजिक न्याय और मानवीय गरिमा के साथ जोड़ा। उन्होंने बौद्ध धर्म को इसलिए अपनाया क्योंकि वह करुणा, समता, और तर्क आधारित दर्शन का प्रतिनिधित्व करता था। यह धर्म परिवर्तन उनके लिए आध्यात्मिक मुक्ति का मार्ग नहीं, बल्कि एक सांस्कृतिक क्रांति और आत्मसम्मान की घोषणा थी। आज के संदर्भ में भी जब भारत अनेक सामाजिक, आर्थिक और सांस्कृतिक चुनौतियों से जूझ रहा है - जातीय हिंसा, सामाजिक बहिष्कार, भेदभाव और लैंगिक असमानता जैसी समस्याएँ अब भी मौजूद हैं - ऐसे में डॉ. अंबेडकर की सोच और चेतना पहले से कहीं अधिक प्रासंगिक हो गई है। उनके विचार आज के युवा आंदोलनों, महिला आंदोलनों, सामाजिक न्याय की लड़ाइयों, बहुजन विमर्श और मानवाधिकार के आंदोलनों में एक प्रेरणा के रूप में सक्रिय हैं। डॉ. अंबेडकर की दलित चेतना केवल अतीत की एक क्रांति नहीं थी, बल्कि वह वर्तमान और भविष्य के लिए एक सशक्त वैचारिक मार्गदर्शन है। उनका जीवन हमें यह सिखाता है कि सामाजिक परिवर्तन केवल नारों या कानूनों से नहीं, बल्कि विचार, संघर्ष और सामूहिक जागरूकता से आता है। उन्होंने भारत के भविष्य को एक समतामूलक, न्यायपूर्ण और लोकतांत्रिक समाज के रूप में देखने का जो सपना देखा था, वह आज भी अधूरा है - और उसे पूरा करना हमारी सामाजिक और नैतिक जिम्मेदारी है। अंबेडकर केवल एक व्यक्ति नहीं, बल्कि एक विचारधारा हैं - जो युगों तक जीवित रहेगी।

संदर्भ:

1. अंबेडकर, भीमराव, *शिक्षा और समाज*, नागपुर, 1953, पृ.22.
2. ओमवेद्त, गेल, *अंबेडकर: टुवर्ड्स एन इनलाइटेन्ड इंडिया*, नई दिल्ली, 2008, पृ.45.
3. शर्मा, रजनीश, *डॉ. अंबेडकर का शैक्षिक चिंतन,* भोपाल, 2012, पृ.38.
4. जोधका, एस. एस., *कास्ट इन कंटेंपरेरी इंडिया*, नई दिल्ली, 2012, पृ.101.
5. कांबले, टी. आर., *डॉ. अंबेडकर और दलित आंदोलन*, पुणे, 2005, पृ.67.
6. लक्ष्मण, के., *दलित एंड एजुकेशन इन इंडिया,* हैदराबाद, 2010, पृ.88.
7. अंबेडकर, भीमराव, भारत का संविधान: उसकी उत्पत्ति और विकास, नई दिल्ली, 1950, पृ.49.
8. ओमवेद्त, गेल, *पूर्वोक्त,* पृ.108–110.
9. कांबले, टी.आर., *भीमराव अंबेडकर: सामाजिक न्याय के अग्रदूत*, मुंबई, 1999, पृ.92.
10. शेखर, सी.बी., *भारतीय संविधान और दलित अधिकार*, पटना, 2012, पृ.68.

11. जाफर, एस.एम., *डॉ. अंबेडकर एंड इंडियन कांस्टीट्यूशन*, अलीगढ़, 2003, पृ.37.
12. ओमवेद्त, गेल, *पूर्वोक्त*, पृ.88.
13. जाफरलोट, क्रिस्टोफ, *अंबेडकर एंड द अनटचेबल्स*, लंदन, 2005, पृ.117.
14. राम, सुरेंद्र, *डॉ. भीमराव अंबेडकर: जीवन और दर्शन*, नई दिल्ली, 2011, पृ.154.
15. अंबेडकर, भीमराव, *रानाडे, गांधी और जिन्ना*, नागपुर, 1943, पृ.25–27.
16. खैरमोड़े, चंपतराव, *डॉ. अंबेडकर: पॉलिटिकल थॉट*, मुंबई, 1988, पृ.179.
17. आंबेडकर, भीमराव, *बुद्ध और उनका धर्म*, नागपुर, 1957, पृ.79.
18. गायतोंडे, जयंत. *डॉ. आंबेडकर और नवबौद्ध आंदोलन*, पुणे,2005, पृ.65.
19. ओमवेद्त, गेल. *पूर्वोक्त*, पृ.91.
20. लक्ष्मीनारायण, *भारत में बौद्ध धर्म का पुनर्जागरण*, दिल्ली, 2011, पृ.103.
21. जाफरलोट, क्रिस्टोफ़, *भारत में पिछड़ों की राजनीति*, हैदराबाद, 2003, पृ.128.
22. अंबेडकर, भीमराव, *जाति का उन्मूलन*, नई दिल्ली, 2016, पृ.35.
23. अंबेडकर, भीमराव, *बुद्ध और उनका धर्म,* नागपुर, 1957, पृ.93.
24. अंबेडकर, भीमराव, *शूद्र कौन थे*, नई दिल्ली, 2012, पृ.56.
25. अंबेडकर, भीमराव, *अस्पृश्यों का निर्मूलन*, पुणे, 1955, पृ.25.
26. ओमवेद्त, गेल, *पूर्वोक्त*, पृ.77–79.
27. जयसवाल, सुधीर, *डॉ. अंबेडकर और सामाजिक न्याय का विचार*, पटना, 2018, पृ.77.
28. मेश्राम, एन. जी., *डॉ. अंबेडकर का मानवाधिकार दृष्टिकोण*, नागपुर, 2004, पृ.144.
29. अंबेडकर, भीमराव, *पूर्वोक्त*, 2016, पृ.47.
30. अंबेडकर, भीमराव, *पूर्वोक्त*, नागपुर, 1957, पृ.88–90.
31. ओमवेद्त, गेल, *पूर्वोक्त*, पृ.78.
32. गुरावल, सुरेंद्र, *दलित आंदोलन और अंबेडकरवादी विचारधारा*, वाराणसी, 2012, पृ.97.
33. तिवारी, रमेश, *भारत में जातिवाद और सामाजिक न्याय*, नई दिल्ली, 2018, पृ.115–117.
34. साने, अनिरुद्ध, *आज का दलित विमर्श*, पुणे, 2020, पृ.54.